शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 135-147

प्रेमचंद की पत्रकारिता और दलितोद्धार का प्रश्न

✍ **अहमद रजा**

शोध-सार :

प्रेमचंद ने जिस प्रकार अपने साहित्य में दलितों को स्थान देकर उनकी समस्याओं को उजागर किया है, उसी प्रकार अपनी पत्रकारिता में भी किया है। प्रेमचंद गरीबों और पीड़ितों की आवाज़ थे। शोषितों का उद्धार करना ही उनकी लेखनी का मुख्य उद्देश्य था। प्रेमचंद चूंकि गांधीजी की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे, इसीलिए उन्होंने अम्बेडकर की दलित संबंधी विचारधारा का समर्थन न कर अपनी पत्रकारिता के द्वारा गांधीजी का समर्थन किया है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को घर-घर पहुंचाने और लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए ही वे साहित्य से पत्रकारिता के क्षेत्र में आते हैं। पत्रकारिता जनमत निर्माण में साहित्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करती है। इसी जनमत को संगठित करने के लिए प्रेमचंद पत्रकारिता का सहारा लेते हैं।

बीज शब्द : *दलित, हरिजन, अंबेडकर, महात्मा गांधी, पत्रकार प्रेमचंद, ब्राह्मण, पृथक निर्वाचन*

प्रस्तावना :

प्रेमचंद न केवल एक सफल साहित्यकार थे, बल्कि एक निर्भीक पत्रकार भी थे। ब्रिटिश के क्षसंकाल में भारत के प्रायः सभी बड़े साहित्यकारों ने साहित्य के साथ पत्रकारिता को भी अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बनाया था। पत्रकारिता चूंकि साहित्य की अपेक्षा जनमत निर्माण में अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है, इसीलिए उस युग की पत्रकारिता में ब्रिटिशयुगीन भारत की समस्त समस्याओं को स्थान दिया गया था। प्रेमचंद गरीबों और शोषितों के लेखक माने जाते हैं। उन्होंने ब्रिटिश भारत की दयनीय स्थिति पर केवल क्षोभ ही नहीं प्रकट किया बल्कि उसके निवारण का

मार्ग भी जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके द्वारा दलितोद्धार संबंधी लेख उनकी पत्र-पत्रिकाओं में आज भी विद्यमान है।

विश्लेषण :

हिंदी साहित्य का जो रूप वर्तमान समय में दिखाई देता है, उसका अस्तित्व कहीं न कहीं ब्रिटिश भारत की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में आज भी जीवित है। इस सत्य को उजागर करते हुए हिंदी साहित्य के आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' में लिखा है-

> प्रेमचंद सिर्फ कथाकार नहीं थे, पत्रकार भी थे। भारतेंदु से लेकर प्रेमचंद तक हिंदी साहित्य की परम्परा में यह बात ध्यान देने की है कि हमारे सभी बड़े साहित्यकार पत्रकार भी थे। पत्रकारिता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। यह पत्रकारिता एक सजग और लड़ाकू पत्रकारिता थी, जो देश विदेश के घटना–क्रम में दखल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर संबंध को मज़बूत करती थी।(शर्मा 1967:130)

दलितों के अधिकार और उद्धार को लेकर पराधीन भारत में दो विचारधाराएँ प्रयासरत थीं। प्रथम विचारधारा का समर्थन गांधीजी और उनके सहयोगी कर रहे थे। गांधीजी की मान्यता थी कि दलितों का उद्धार हिंदू समाज के साथ मिलकर ही किया जा सकता है। गांधीजी स्वराज्य प्राप्ति में ही देश के सभी अल्पसंख्यकों का उद्धार समझ रहे थे। दूसरी विचारधारा के समर्थक थे अम्बेडकर और उनके सहयोगी। वे दलितों के पृथक निर्वाचन, पृथक स्कूल और पृथक समुदाय की मांग के समर्थक थे। गांधीजी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश के प्रत्येक समुदाय को संगठित करना आवश्यक समझ रहे थे। यही कारण था कि उन्होंने अम्बेडकर द्वारा किये जा रहे दलितों के पृथक निर्वाचन की मांग का विरोध किया था। प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में अम्बेडकर की मांग का समर्थन न कर गांधी की विचारधारा का समर्थन किया।

प्रेमचंद की पत्रकारिता की पृष्ठभूमि :

प्रेमचंद ने 'जागरण' समाचार पत्र का सम्पादन किया था। प्रेमचंद की पत्रकारिता की पृष्ठभूमि में गोलमेज़ सम्मेलन प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। गोलमेज़ सम्मेलनों का एक प्रमुख विषय दलितों का मुद्दा था। अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारत में संवैधानिक सुधारों पर चर्चा के लिए 1930–32 ई. के बीच तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। प्रथम गोलमेज सम्मेलन (नवंबर 1930 से जनवरी 1931) में सम्मिलित भारतीय नेताओं की तरफ से भारत की राजनीतिक स्थिति को लेकर बहस हो रही थी। इन बहसों में अन्य भारतीय नेताओं द्वारा अल्पसंख्यकों के पृथक निर्वाचन की मांग भी रखी गई थी। दूसरे गोलमेज सम्मेलन (1931 ई.) में गांधीजी ने इस पृथक निर्वाचन के विरुद्ध सम्मिलित निर्वाचन को भारतीय एकता को मजबूत करने के लिए जरूरी करार दिया। गाँधीजी का कहना था कि उनकी पार्टी (कांग्रेस) पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती है। द्वितीय गोलमेज आंदोलन में गांधीजी की मांगें निम्नलिखित थीं-

- केंद्र और प्रान्तों में तुरंत और पूर्ण रूप से एक उत्तरदायी सरकार स्थापित की जानी चाहिए।
- केवल कांग्रेस ही राजनीतिक भारत का प्रतिनिधित्व करती है।
- अछूत भी हिन्दू हैं अतः उन्हें “अल्पसंख्यक” नहीं माना जाना चाहिए।
- मुसलामानों या अन्य अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन या विशेष सुरक्षा उपायों को नहीं अपनाया जाना चाहिए।

वहीं दूसरी ओर मुसलामानों, ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों एवं दलितों ने भी पृथक प्रतिनिधित्व निर्वाचन की माँग रखी और ये सभी एक ‘अल्पसंख्यक गठजोड़' के रूप में संगठित हो गये। चूंकि ब्रिटिश सरकार भी देश की एकता को खंडित करने के लिए पृथक निर्वाचन को लागू करना चाहती थी। लेकिन गाँधीजी साम्प्रदायिक आधार पर संवैधानिक प्रस्ताव के विरोध में अंत तक डटे रहे। मुस्लिम लीग का कहना था कि कांग्रेस मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हित में काम नहीं करती है। राजे-रजवाड़ों का दावा था

कि कांग्रेस का उनके नियंत्रण वाले भू–भाग पर कोई अधिकार नहीं है। तीसरी चुनौती तेज–तर्रार वकील और विचारक बी. आर. अम्बेडकर की तरफ़ से थी जिनका कहना था कि गाँधीजी और उनकी पार्टी निचली जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। लंदन में हुआ यह सम्मेलन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका; इसलिए गाँधीजी को खाली हाथ लौटना पड़ा। भारत लौटने पर उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया। गांधीजी ब्रिटिश शासन् की इस षड्यंत्रकारी नीति को भली-भाँति समझ रहे थे। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए सभी भारतीय समुदाय को संगठित करना आवश्यक समझा था। गांधीजी ने देश की एकता को बनाये रखने के लिए उपर्युक्त सांप्रदायिक मांगों और ब्रिटिश षड्यंत्र के विरुद्ध यरवदा जेल में व्रत रखना शुरू कर दिया। इस प्रकार 'दलितों के लिए की गई पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था का गांधीजी ने विरोध किया और 20 सितंबर 1932 ई. को गांधीजी ने अनशन प्रारंभ कर दिया। गांधीजी इस समय पूना की यरवदा जेल में थे। कम्युनल एवार्ड की घोषणा होते ही पहले तो उन्होंने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर इसे बदलवाने का प्रयास किया, परंतु जब उन्होंने देखा कि यह निर्णय बदला नहीं जा रहा, तो उन्होंने अंतिम सांस तक व्रत रखने की घोषणा कर दी। 24 सितंबर, 1932 ई. को राजेंद्र प्रसाद व मदन मोहन मालवीय के प्रयासों से गांधीजी और अंबेडकर के मध्य पूना समझौता हुआ, जो बाद में पूना पैक्ट के नाम से मशहूर हुआ' (Kothari 2004:46) । इस समझौते में डॉ. अम्बेडकर को कम्युनल अवॉर्ड में मिले पृथक निर्वाचन के अधिकार को छोड़ना पड़ा तथा संयुक्त निर्वाचन पद्धति को स्वीकार करना पड़ा, परन्तु साथ ही कम्युनल अवार्ड से मिली 71 आरक्षित सीटों की बजाय पूना पैक्ट में आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ा कर 148 करवा ली गई। साथ ही अछूतों के लिए प्रत्येक प्रांत में शिक्षा अनुदान में पर्याप्त राशि नियत करवाई और सरकारी नौकरियों में बिना किसी भेद-भाव के दलित वर्ग के लोगों की भर्ती को सुनिश्चित किया।

प्रेमचंद की दृष्टि देश-विदेश में चल रही इन हलचलों पर थी। प्रेमचंद गांधीजी को तत्कालीन भारत के लिए किसी उद्धारक से कम नहीं समझते थे। 19 दिसंबर 1932 ई. को 'जागरण' साप्ताहिक

पत्र में प्रकाशित 'महान तप' शीर्षक में उन्होंने गांधीजी द्वारा किए जा रहे महान तप की प्रशंसा करते हुए लिखा-

> कल यरवदा जेल में वह महान तप होगा, जिसकी कल्पना से ही रोमांच हो जाता है।....राष्ट्र पर इस समय जो संकट पड़ा हुआ है, उसका मोचन तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता था। राष्ट्र की नौका सांप्रदायिक भंवर में चक्कर खा रही थी। ....उसी समय यरवदा जेल की ऊंची चारदीवारियों को भेदती, सरकार की गोपन नीति को चीरती हुई तुम्हारी इस भीषण प्रतिज्ञा की आवाज, आकाशवाणी,सी– हमारे कानों में आती है, और सारा देश सचेत हो जाता है, हमारी मुरझाई हुई आशा फिर लहलहा जाती है, हमारी निर्जीव देह में जान पड़ जाती है। हमारी आंखे खुल जाती है और हम देखते हैं कि जब राष्ट्र ही न रहा तो स्वराज्य कहाँ। जब संस्कृति ही न रही, तो हमारा अस्तित्व ही कहाँ।(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:437)

गांधीजी के विचार में पृथक निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हो जाने से देश की जनता कभी भी ब्रिटिश शासन् के विरुद्ध संगठित नहीं हो सकती थी। देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधने के लिए यह आवश्यक था कि देश का प्रत्येक भारतीय चाहे वह हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, दलित हो, सम्मिलित निर्वाचन के माध्यम से देश की एकता को सुदृढ़ करने की कोशिश करें । जिस प्रकार गांधीजी दलितों का उद्धार हिंदुओं के साथ रहकर ही समझते थे, उसी प्रकार प्रेमचंद भी गांधीजी की तरह 'दलितों के उद्धार में ही हिंदू जाति के उत्थान और उत्कर्ष का रहस्य छिपा हुआ देखते थे'(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:438)। प्रेमचंद की दलितोद्धार संबंधी विचाराधारा गांधीजी की विचारधारा के ही अनुकूल थी। उन्होंने समाज में दलितों की महत्ता को मानव शरीर से जुड़े हुए पैरों से की। प्रेमचंद के विचार में बगैर पैर के जिस प्रकार मानव शरीर पूरा अपंग हो जाता है उसी प्रकार दलितों को समाज से अलग कर दिए जाने से भारतीय समाज भी कभी पनप नहीं सकता। यही कारण था कि प्रेमचंद भी

दलितों के उद्धार का सबसे उत्तम साधन सम्मिलित निर्वाचन के द्वारा ही संभव समझते थे। 19 दिसंबर 1932 ई. को उन्होंने 'जागरण' के संपादकीय में लिखा-

> भारतीय राष्ट्र का आधार मानव शरीर है जिसके मुंह, हाथ, उदर और पांव ये चार अंग हैं। इनमें से किसी एक के विच्छेद हो जाने से देह अपंग या निर्जीव हो जायेगी। हमारे शूद्र भाई इस देह रूपी राष्ट्र के पांव ही काट जाएं, तो देह की क्या गति होगी ?..... दलितों के उद्धार का सबसे उत्तम साधन है – सम्मिलित निर्वाचन। यही उनके उत्थान का मूलमंत्र है।.....महात्मा जी के इस वज्रनिर्घोष ने सारे देश में तहलका डाल दिया है। घरघर– में यही चर्चा है। समस्त देश एक स्वर से कह रहा है– हम अपने प्राणों के प्राण गांधी को, यों बलिवेदी पर न चढ़ने देंगे। हम अपने उन अछूत भाइयों को जो हमसे रूठ गए हैं, मनायेंगे, उनके चरणों पर गिरकर मनायेंगे। हमें विश्वास है डॉ. अम्बेडकर और मि. श्रीनिवासन् भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे।(प्रेमचंद, सं "महान तप" 1932:438-440)

प्रेमचंद दलितों को मानवता के आधार पर हिंदू समाज से समानता का व्यवहार किए जाने की मांग कर रहे थे। किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय को इस कारण अछूत समझना कि वह किसी के घर का मल-मूत्र साफ करता है । प्रेमचंद इसे मानवता के विरुद्ध समझते थे। अछूतों की दयनीय स्थिति के लिए प्रेमचंद हिंदू समाज के स्वार्थ को उत्तरदायी मानते थे। सदियों से स्वार्थ की चक्की में पिस रहे दलित समाज को समानता का अधिकार दिलाने वाले प्रेमचंद इस समुदाय को मानवता का पाठ पढ़ा रहे थे। 'जागरण' में उन्होंने लिखा था-

> पर, अभी कुछ ऐसे प्राणी भी संसार में हैं जिन्हें, अपने स्वार्थ के आगे कुछ नहीं सूझता।... अछूत क्या इसलिए अछूत है कि वे जनसमाज के स्वास्थ्य के लिए उनके घरों की सफाई करते हैं, उनकी सेवा करते हैं।....यदि अछूत उनके घर का मल-मूत्र

> साफ करते हैं, तो वे भी तो इस कार्य से वंचित नहीं हैं। वे भी तो रोज सुबह सबसे पहले यही काम करते हैं।...क्या कोई भी वर्णाश्रम अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि वास्तव में यह छुआछूत उसे धर्म की दृष्टि से उचित प्रतीत होती है ? नहीं, कोई भी यह नहीं कह सकता। एक स्वार्थ ही इसका कारण है। (प्रेमचंद, सं "हमारा कर्तव्य" 1932:442)

प्रेमचंद भी दलितों का उद्धार हिंदू जाति के साथ मिलकर ही संभव समझ रहे थे। उनकी यह मान्यता थी कि पृथक अधिकारों की लड़ाई में देश की एकता को कभी भी स्थापित नहीं किया जा सकता। देश की स्वाधीनता के लिए विभिन्न भारतीय समुदाय को एक प्लेटफार्म पर लाकर खड़ा करना आवश्यक था। यही कारण था कि प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में जहां एक तरफ दलित पृथक निर्वाचन का विरोध किया वहीं दूसरी तरफ दलितों के लिए नागपुर में बने अलग छात्रालय का भी विरोध किया। प्रेमचंद देश की शोषित जनता का उद्धार समाज के अन्य वर्गो से पृथक रहकर नहीं समझते थे। 5 दिसंबर 1932 ई. को 'हरिजन बालकों के लिए छात्रालय' नामक शीर्षक से उन्होंने इस छात्रवास का विरोध करते हुए लिखा था-

> नागपुर में हरिजन बालकों के लिए अलग एक छात्रालय बनाया गया है। इससे तो अछूतपन मिटेगा नहीं, और दृढ़ होगा। उन्हें तो साधारण छात्रावासों में बिना किसी विचार के स्थान मिलना चाहिए।(प्रेमचंद, सं "हरिजन बालकों के लिए छात्रावास" 1932:450)

पराधीन भारत में दलितों को अछूत समझने के कारण उन्हें मंदिर-प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं की जाती थी। कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों की बनी बनायी धार्मिक नीति ने अछूतों के मंदिर-प्रवेश को वर्जित करार दिया था। गांधीजी ने दलित समाज को मंदिर-प्रवेश को लेकर भी जगह-जगह अनशन किए और विभिन्न विचार सभाएँ स्थापित कीं। गांधीजी और अम्बेडकर के प्रयत्न से धीरे–धीरे हिंदू

समाज उन्हें बराबरी का दर्जा दिये जाने की माँग लेकर संगठित होने लगा था। लेकिन देश के कुछ ब्राह्मणों द्वारा गांधीजी के इस अनशन का विरोध भी किया जा रहा था। ब्राह्मणों की इस प्रतिक्रिया का विरोध प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता में करते हुए दिखाई देते हैं। मंदिर-प्रवेश को लेकर प्रेमचंद गांधीजी की विचारधारा का समर्थन कर रहे थे। तत्कालीन भारत में हरिजन मंदिर-प्रवेश को लेकर किये जा रहे विभिन्न आंदोलनों और उससे संबंधित प्रेमचंद के विचारों को निम्नलिखित दिये गये शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है– 'काशी का कलंक' (जागरण, 5 अक्टूबर 1932 ई.), 'हरिजन के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न (जागरण,14 नवंबर 1932 ई.), 'अछूतों को मंदिर में जाने देना पाप है,' 'वायसराय की सेवा में डेपुटेशन जा रहा है', 'वर्णाश्रम स्वराज्य–संघ का आंदोलन' (21 नवम्बर 1932 ई.), 'धर्म भेद नहीं सिखाता,' 'मंदिर–प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा' (26 दिसंबर 1932 ई.), 'मंदिर प्रवेश और सरकार' (30 जनवरी 1933 ई.), 'मंदिर–प्रवेश और हरिजन' (29 मई 1933 ई.), 'क्या हम वास्तव में राष्ट्र–वादी हैं?', 'टके–पंथी पुजारी, पुरोहित और पंडे हिंदू जाति के कलंक हैं' (8 जनवरी 1934 ई.), 'बिहार और मंदिर सम्मेलन' (29 जनवरी 1934 ई.), 'काशी में मंदिर प्रवेश बिल का समर्थन' (19 मार्च 1933 ई.) इत्यादि।

ब्राह्मणों द्वारा किए जा रहे मंदिर-प्रवेश निषेध आंदोलन का उपहास उड़ाते हुए प्रेमचंद लिखते हैं-

> मंगल के दिन संध्या-समय की गर्द-भरी सड़कों पर वह दृश्य देखने में आया, जो हिंदू-जाति के लिए लज्जाजनक ही नहीं, हास्यापद भी था। दो-ढाई सौ संस्कृत पाठशालाओं के छात्र हाथों में लाल झंडे लिए, एक जुलूस के रूप में यह हांक लगाते चले आ रहे थे– 'अछूतों को मंदिरों में जाने देना, पाप है' । हाँक का पहला अंश एक आदमी के मुख से निकलता था, और दूसरा अंश सैकड़ों कंठों से कोरस के रूप में निकल रहा था, लेकिन उन आवाजों में उत्साह न था, भक्ति न थी, अनुराग न था। ऐसा जान पड़ता था जैसे

> कोई जीर्ण रोगी मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ कराह रहा है। (प्रेमचंद, सं "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है" 1932:447)

प्रेमचंद दलितों के सच्चे हिमायती थे। उन्होंने जिस प्रकार अपने कथा साहित्य में ब्राह्मणों की थोथी नैतिकता और धार्मिकता का पुरज़ोर विरोध किया, उसी प्रकार अपनी पत्रकारिता में भी उनको अपने आड़े हाथों लिया। भेद-भाव को बढ़ावा देने वाले और अछूतों के अधिकार में रुकावट बनने वाले ब्राह्मणों को वे आड़े हाथों लेते हैं। ढोंगी बाबाओं और पाखंडी ब्राह्मणों से संबंधित उनके लेख आक्रोश लिए हुए होते थे। आक्रोश भरे हुए उनके एक लेख का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जाता है-

> हमारे पास अंग्रेजी में छपा हुआ, वायसराय के नाम एक मेमोरियल, वर्णाश्रम संघ का, आया है। उस पर बड़ेबड़े– तर्क चूड़ामणियों और विद्यावाचस्पतियों के हस्ताक्षर हैं। वायसराय से फरियाद की गई है कि वह हिंदू मंदिरों की अछूतों से रक्षा करें। वाह रे मार्तंडों ! क्यों न हो, कितनी दूर की सूझी है।...आपका फतवा (तो) बड़ेबड़े– मसलों को हल कर दिया करता था और आज आप एक धर्म के विषय को लिए वायसराय के पास, कुत्तों की तरह दुम हिलाते हुए, चले जा रहे हैं।....हिंदू समाज की और राष्ट्र की जो वर्तमान अधोगति हो रही है, उसके ज़िम्मेदार आप ही जैसे लोग हैं।(प्रेमचंद, सं "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है" 1932:447)

देश की शोषित और पीड़ित जनता की हिमायत करने और उच्च जातियों की अनैतिकता का विरोध करने के कारण ही उन्हें 'घृणा का प्रचारक' कहा जाने लगा था।

दलितों के मंदिर-प्रवेश को लेकर केरल में 'गुरुवयूर सत्याग्रह' 1 नवम्बर, 1931 ई. में शुरू किया गया था। यह आंदोलन केरल के प्रसिद्ध 'गुरुवयूर मंदिर' में दलितों एवं पिछड़ों को प्रवेश दिलाने के अधिकार को लेकर के. केलप्पण के कहने पर 'केरल कांग्रेस कमेटी' द्वारा चलाया गया। 1 नवम्बर,1931 ई. को 'अखिल केरल मंदिर प्रवेश दिवस' के रूप में मनाया गया। पीत सुब्रह्मण्यम तिरुभावु के नेतृत्व

में 16 स्वयं सेवकों का एक दल 21 अक्टूबर को ही कानायूर से गुरुवयूर की ओर प्रस्थान कर चुका था। 1 नवम्बर को जब सत्याग्रही मंदिर के पूर्वी द्वार की ओर जा रहे थे, तब मंदिर के कर्मचारियों ने उन पर हमला कर दिया। पी. कृष्ण पिल्लै, ए. के. गोपालन गम्भीर रूप से घायल हुए। 21 दिसम्बर, 1932 ई. को सत्याग्रह का रूप और भी कठोर हो गया। के. केलप्पण आमरण अनशन पर बैठ गये। उन्होंने अपना अनशन तब तक समाप्त न करने की घोषणा की, जब तक मंदिर के दरवाज़े दलितों के लिए नहीं खुल जाते। केरल तथा देश के विभिन्न भागों में हिन्दुओं ने मंदिर के संरक्षक कालीकट के राजा जमोरिन से अनुरोध किया कि वे मंदिरों में दलितों और हरिजनों के प्रवेश की अनुमति दें। महात्मा गाँधी के अनुरोध पर के. केलप्पण ने 2 अक्टूबर, 1932 ई.को अनशन समाप्त कर दिया, परंतु संघर्ष पहले की ही तरह जारी रहा।

प्रेमचंद की दृष्टि देश में चल रही इन हलचलों से कब ओझल हो सकती थी। 5 दिसंबर, 1932 ई. को 'महात्मा जी का उपवास' में जहाँ एक तरफ उन्होंने श्री केलप्पन की प्रशंसा की, वहीं दूसरी ओर जमोरिन की खुलकर निंदा भी की। इस संबंध में वह लिखते हैं-

> श्री केलप्पण ने जिस साहस से गुरुवयूर के मंदिर को अछूतों के लिए खुलवा देने के लिए उपवास करने का निश्चय किया था, जिस साहस से वे कई दिन तक लगातार उपवास करते रहे, उसकी कितनी प्रशंसा की जावे, थोड़ी है। उस समय जमोरिन ने ज़िद्द कर मंदिर न खोलने में जो अहम्मन्यता तथा जड़ता दिखलाई थी, उसकी जितनी निंदा की जावे थोड़ी है।(प्रेमचंद, सं "महात्मा जी का उपावास" 1932:449-450)

अछूतों के मंदिर-प्रवेश को लेकर ब्राह्मणों द्वारा जो विरोध और प्रदर्शन किया जा रहा था उसका समर्थन ब्रिटिश सरकार भी कर रही थी। देश भर में हो रहे दलितोद्धार आंदोलनों के कारण हिंदू जनता दलितों के मंदिर–प्रवेश का समर्थन करने लगी थी। मद्रास इस दृष्टि से अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन कर रहा था। मद्रास की जनता ने श्रीयुत सुब्बरायन के माध्यम से तत्कालीन वायसराय से मद्रास कौंसिल में 'मंदिर-प्रवेशाधिकार' को लेकर प्रस्ताव रखने की मांग की थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार

इस बिल को 'जनमत का अभाव' कहकर रद्द कर रही थी। अंग्रेज सरकार इस बिल को ब्रिटिश साम्राज्य के लिए हानिकारक समझ रही थी। ब्रिटिश सरकार 'अस्पृश्यता निवारण आंदोलन को कांग्रेस की एक राजनैतिक चाल समझती थी तथा उसके विचार में अस्पृश्यता का शोर मचाकर कांग्रेस अछूतों को अपने पंजे में कर, कौंसिलों में उनको अपने साथ रखने की चाल खेल रही है।' (प्रेमचंद, सं "मंदिर प्रवेश और सरकार" 1933:459) वहीं दूसरी ओर श्रीयुत रंगाअय्यर ने भी भारत में पनप रही जाति-पाति की बाधाओं को खत्म करने के उद्देश्य से मद्रास एसेंबली में 23 जनवरी, 1933 ई. को एक प्रस्ताव पेश करने की मांग की थी। तत्कालीन वायसराय ने इसे मंजूरी दे दी। प्रेमचंद ब्रिटिश सरकार की इस दोगली नीति के पीछे छिपे स्वार्थ को भलीभाँति समझ रहे थे। प्रेमचंद ने 30 जनवरी,1933 ई. को ब्रिटिश सरकार की इस दोगली नीति का विरोध करते हुए लिखा-

> वायसराय जानते हैं कि यदि वे मद्रास बिल (मंदिर–प्रवेशाधिकार बिल(को नामंजूर करेंगे तो उनको दुनिया भर बुरा कहेगा, यदि स्वीकार कर लेंगे तो कांग्रेस की चाल सफल हो जावेगी, इसीलिए रंगाअय्यर के निर्दोष बिल को इजाज़त दी गई है कि बदनामी से बची रहे।...सरकार यह देख रही है कि मंदिर–प्रवेश के संबंध में मूढ़ सनातनियों का एक भाग गांधीजी के तथा कांग्रेस के विरुद्ध होकर सूर्य पर थूकने का प्रयास कर रहा है।... अतएव सरकार सोचती है कि मंदिर–प्रवेश की समस्या में जड़वादियों का साथ देने से वह मूढ़ सनातनियों का सहयोग प्राप्त कर लेगी तथा इस प्रकार कांग्रेस में भी गहरी फूट पैदा हो जावेगी। (प्रेमचंद, सं "मंदिर प्रवेश और सरकार" 1933:460)

प्रेमचंद एक निर्भीक और ईमानदार पत्रकार की भाँति देश की पीड़ित और शोषित जनता के अधिकार के लिए जीवन भर प्रयास करते रहे। उनकी लेखनी किसी भी सांप्रदायिक नेता अथवा ब्रिटिश

सरकार के खौफ से नहीं रुकी। पत्रकार प्रेमचंद की पत्रकारिता की यही सबसे बड़ी प्रासंगिकता कही जा सकती है।

निष्कर्ष :

प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता के माध्यम से निरंतर दलितोत्थान का प्रयत्न कर रहे थे। प्रेमचंद हमेशा गरीब और शोषित जनता की वकालत करते थे। प्रेमचंद के दलितोद्धार संबंधी चिंतन पर गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। अम्बेडकर की चिंतनधारा उन्हें ज़्यादा प्रभावित नहीं कर सकी। प्रेमचंद भारत की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट थे। ब्राह्मणों को लेकर उनके स्वर आक्रोश का रूप धारण कर लेते थे। दलितों की दयनीय स्थिति के लिए प्रेमचंद ने इन्हीं ब्राह्मणों की थोथी नैतिकता को उत्तरादायी ठहराया है।

ग्रंथ-सूची:

प्रेमचंद. "अछूतों को मंदिरों में जाने देना पाप है." जागरण 21 नवंबर,1932.

---."महान तप." जागरण 19 दिसंबर 1932.

---."महात्मा जी का उपवास." जागरण 5 दिसंबर, 1932.

---."मंदिर प्रवेश और सरकार." जागरण 30 जनवरी, 1933.

---."हमारा कर्तव्य." जागरण 26 सितंबर, 1932.

---."हरिजन बालकों के लिए छात्रालय." जागरण 5 दिसंबर, 1932.

शर्मा, रामविलास.प्रेमचंद और उनका युग.नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 1967.

Kothari, R. Caste in Indian Politics. Hyderabad:Orient Blackswan, 2004.

संपर्क-सूत्र :
हिंदी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
ई-मेइल: mahiraza619@gmail.com